प्रकाशन हेतु अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

रिट याचिका (सेवा) क्रमांक 4041/2007

याचिकाकर्तागण - मुक्तिपद घोषाल, पिता स्वर्गीय श्री बी.एन. घोषाल, आयु लगभग 62 वर्ष, सेवानिवृत्त सहायक अभियंता, जल संसाधन विभाग, निवासी जे-बी, पारिजात कॉलोनी, नेहरू नगर, बिलासपुर (छ.ग.)

बनाम

उत्तरवादीगण - 1. छत्तीसगढ़ राज्य, द्वारा प्रमुख सचिव, जल संसाधन विभाग, डी.के.एस. भवन, रायपुर (छ.ग.)।

2. अभियंता-प्रमुख, जल संसाधन विभाग, छत्तीसगढ़ शासन, रायपुर (छ.ग.)।

3. मुख्य अभियंता, मिनीमाता हसदेव बांगो परियोजना, बिलासपुर (छ.ग.)।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिका

एकल पीठ : माननीय न्यायमूर्ति श्री सतीश के. अग्निहोत्री

.....

उपस्थित:

याचिकाकर्ता की ओर से श्री पी.के. भादूरी, अधिवक्ता।

राज्य/उत्तरवादीगण की ओर से श्री वाई.एस. ठाकुर, शासकीय अधिवक्ता।

.....

आदेश

(दिनांक 12 जुलाई, 2007 को पारित)

(1) इस याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता वर्ष 1999 से उच्च वेतनमान/क्रमोन्नति प्रदान किए जाने तथा सेवानिवृत्ति की तिथि तक समस्त बकाया राशि एवं उस पर ब्याज के अनुतोष की मांग करता है।

(2) संक्षेप में निर्विवाद तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को दिनांक 09.08.1966 को जल संसाधन विभाग में ओवरसीयर/उप-अभियंता के पद पर नियुक्त किया गया। तत्पश्चात, दिनांक 05.10.1983 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता को सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नत किया गया। इसके बाद याचिकाकर्ता अपनी सेवानिवृत्ति की तिथि अर्थात् 31.05.2005 तक सहायक अभियंता के पद पर कार्य करता रहा।

(3) सेवानिवृत्ति के पश्चात याचिकाकर्ता ने दिनांक 09.07.2007 को यह याचिका प्रस्तुत की, जिसमें वर्ष 1999 से क्रमोन्नति/उच्च वेतनमान दिए जाने का दावा किया गया है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के अनुसार, दिनांक 17 मार्च, 1999 के परिपत्र (अनुलग्नक पी./1) के अनुसार, याचिकाकर्ता 24 वर्ष की सेवा पूर्ण करने के उपरांत उच्च वेतनमान प्राप्त करने का अधिकारी था, क्योंकि उसे सेवा अवधि में एक से अधिक पदोन्नति प्राप्त नहीं हुई थी। अधिवक्ता ने उच्च वेतनमान/क्रमोन्नति प्रदान करने के लिए उक्त परिपत्र की धारा 2(ख) पर निर्भर किया है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(4) अधिवक्ता के अनुसार, याचिकाकर्ता ने वर्ष 1978 में 12 वर्ष की सेवा पूर्ण कर ली थी। तत्पश्चात, उसे दिनांक 15.10.1983 को पदोन्नति प्रदान की गई। याचिकाकर्ता ने अपनी नियुक्ति की प्रथम तिथि से 24 वर्ष की सेवा केवल एक पदोन्नति के साथ पूर्ण की। अधिवक्ता का यह भी कहना है कि समान परिस्थितियों वाले अन्य कर्मचारियों को वर्ष 1999 से उच्च वेतनमान प्रदान किया जा चुका है। अतः याचिकाकर्ता उच्च वेतनमान निर्धारण एवं पेंशन के पुनरीक्षण का अधिकारी है।

(5) याचिकाकर्ता के स्वयं के कथनानुसार, वह वर्ष 1999 से पूर्व ही उच्च वेतनमान प्राप्त करने का पात्र हो गया था, परंतु कार्य हेतुक वर्ष 1999 में उत्पन्न हुआ, जब अन्य समान रूप से स्थित कर्मचारियों को उच्च वेतनमान प्रदान किया गया।

(6) याचिकाकर्ता दिनांक 31.05.2005 से सेवानिवृत्त हो चुका है। सेवानिवृत्ति की तिथि तक याचिकाकर्ता ने कोई औपचारिक शिकायत या याचिका प्रस्तुत नहीं की, केवल संबंधित प्राधिकारियों के समक्ष कुछ अभ्यावेदन प्रस्तुत किए। एक से अधिक अभ्यावेदन प्रस्तुत करने से परिसीमा की अवधि स्थगित नहीं होती। यह स्थापित विधि सिद्धांत है कि यदि किसी अभ्यावेदन का उत्तर नहीं दिया जाता है, तो पीड़ित व्यक्ति को उचित समय के भीतर न्यायालय का आश्रय लेना चाहिए। वर्तमान प्रकरण में, याचिकाकर्ता ने अपना प्रथम अभ्यावेदन लगभग तीन वर्ष पश्चात्, अर्थात् सितंबर 2002 (अनुलग्नक पी./2) में प्रस्तुत किया, इसके बाद मई 2003 (अनुलग्नक पी./3) तथा मार्च 2006 (अनुलग्नक पी./4) में अभ्यावेदन प्रस्तुत किए।

(7) नियोक्ता एवं कर्मचारी का संबंध सेवा अवधि के दौरान ही विद्यमान रहता है, उसके पश्चात नहीं। याचिकाकर्ता को वर्ष 1999 में ही, अथवा सेवा में रहते हुए, अपनी शिकायत इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करनी चाहिए थी। सेवानिवृत्ति के पश्चात भी याचिकाकर्ता ने इस याचिका को दायर करने में दो वर्ष का और विलंब किया। अतः यह याचिका ग्राह्य नहीं है, क्योंकि याचिकाकर्ता ने बिना किसी संतोषजनक स्पष्टीकरण के अपने अधिकार पर अत्यधिक अवधि (लगभग आठ वर्ष) तक निष्क्रियता बरती है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(8) यह याचिका अत्यधिक, अनुचित एवं अस्पष्टीकृत विलंब (8 वर्ष से अधिक) के पश्चात दायर की गई है। याचिकाकर्ता इस विलंब के लिए किसी प्रकार का युक्तिसंगत कारण प्रस्तुत करने में असफल रहा है।

(9) यह सुव्यवस्थित विधि सिद्धांत है कि उच्च न्यायालय अपनी विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए सामान्यतः उन व्यक्तियों की सहायता नहीं करता जो विलंब करने वाले, उदासीन, मौन स्वीकृति देने वाले अथवा शिथिल हों, क्योंकि विलंब से न्यायालय का दरवाजा खटखटाने से न केवल कठिनाई एवं असुविधा उत्पन्न होती है, बल्कि तृतीय पक्षकारों के साथ अन्याय भी हो सकता है।

(10) माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **जगदीश नारायण मालतियार बनाम बिहार राज्य व अन्य**[1] के प्रकरण में निम्नलिखित अवधारित किया है—

> "अतः अगस्त 1963 में अपीलार्थी को यह ज्ञात हुआ कि उसकी सेवाएँ वास्तव में गंभीर कदाचार के आधार पर समाप्त की गई थीं। इसके पश्चात लगभग 3 वर्षों तक वह एक के बाद एक अभ्यावेदन शासन को प्रस्तुत करता रहा और वर्ष 1966 के अंत तक ही उसने उच्च न्यायालय में हटाने के आदेश को चुनौती देने हेतु रिट याचिका दायर की। उसके द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन दया याचिकाओं के स्वरूप के थे, और उसे यह समझना चाहिए था कि विधि द्वारा प्रदत्त उपयुक्त उपाय का अनुसरण न करते हुए वह एक महत्वपूर्ण अधिकार को जोखिम में डाल रहा है। उसके इस आचरण के कारण उच्च न्यायालय उसके पक्ष में अपनी असाधारण शक्तियों का प्रयोग करने में असमर्थ हो गया। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा याचिका पर विचार करने से इंकार करना उचित था।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(11) माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **पी.एस. सदाशिवस्वामी बनाम तमिलनाडु राज्य**[2] के प्रकरण में निम्नलिखित अवधारित किया है

> "यह नहीं है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत न्यायालयों की शक्तियों के प्रयोग के लिए कोई निश्चित परिसीमा अवधि निर्धारित है, और न ही यह कि किसी निश्चित समय के पश्चात न्यायालय किसी मामले में हस्तक्षेप नहीं कर सकते। तथापि, यह न्यायालयों के विवेक का उचित एवं बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयोग होगा कि वे ऐसे व्यक्तियों के मामलों में अपनी असाधारण शक्तियों का प्रयोग करने से इंकार करें, जो समय पर राहत प्राप्त करने हेतु न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटाते, बल्कि परिस्थितियों को घटित होने देते हैं और तत्पश्चात पुराने दावों को प्रस्तुत कर स्थापित स्थितियों को विचलित करने का प्रयास करते हैं।"

---

1 AIR 1973 SC 1343
2 AIR 1974 SC 2271

(12) माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मप्र राज्य व अन्य बनाम वि. नंदलाल जयसवाल व अन्य**[3] के प्रकरण में आगे यह अवधारित किया है—

> "यह सुव्यवस्थित विधि सिद्धांत है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उपयुक्त रिट जारी करने की उच्च न्यायालय की शक्ति विवेकाधीन है, और इस विवेक के प्रयोग में उच्च न्यायालय सामान्यतः विलंब करने वाले, उदासीन, मौन स्वीकृति देने वाले अथवा शिथिल व्यक्तियों की सहायता नहीं करता। यदि याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका दायर करने में अत्यधिक विलंब हुआ है और उसका संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, तो उच्च न्यायालय अपने रिट अधिकारिता का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप करने एवं अनुतोष प्रदान करने से इंकार कर सकता है। विलंब के इस सिद्धांत का विकास अनेक कारकों पर आधारित है। उच्च न्यायालय सामान्यतः रिट अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत विलंब से की गई याचिका को स्वीकार नहीं करता, क्योंकि इससे भ्रम, लोक असुविधा तथा नई अन्यायपूर्ण परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। इस बीच तृतीय पक्षों के अधिकार भी उत्पन्न हो सकते हैं, और यदि अनुचित विलंब के पश्चात रिट अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया जाता है, तो इससे तृतीय पक्षकारों को कठिनाई, असुविधा एवं अन्याय हो सकता है। जब उच्च न्यायालय के रिट अधिकारिता का आह्वान किया जाता है, तब अस्पष्टीकृत विलंब तथा इस बीच तृतीय पक्ष के अधिकारों का सृजन—ये दोनों महत्वपूर्ण कारक हैं, जिन पर न्यायालय यह निर्णय लेते समय विचार करता है कि उसे इस अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना चाहिए या नहीं। हम इस निर्णय को विभिन्न निर्णयों के उल्लेख से बोझिल करना आवश्यक नहीं समझते, जिनमें बार-बार यह प्रतिपादित किया गया है कि जहाँ अत्यधिक एवं अस्पष्टीकृत विलंब हो तथा मध्यावधि में तृतीय पक्षों के अधिकार उत्पन्न हो गए हों, वहाँ उच्च न्यायालय हस्तक्षेप करने से इंकार करेगा, भले ही राज्य की कार्यवाही असंवैधानिक या अवैध क्यों न हो।"*

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

3 (1986) 4 SCC 566

(13) माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बम स्टैंडर्ड कंपनी लिमिटेड व अन्य दीनाहंधु मजूमदार व एक अन्य**[4] के प्रकरण में भी यह अवधारित किया है—

> "किसी कर्मचारी द्वारा इस विषय में आपत्ति न उठाने का उसका आचरण ही, हमारे मत में, उच्च न्यायालय के लिए यह पर्याप्त कारण होना चाहिए कि वह मौन स्वीकृति, अनुचित विलंब तथा अतिविलंब के आधार पर ऐसी याचिकाओं पर विचार न करे।"

(14) माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **कर्नाटक पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड, द्वारा अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक तथा एक अन्य बनाम के. थंगाप्पन एवं एक अन्य**[5] के प्रकरण में निम्नलिखित अवधारित किया है—

> "विलंब या अतिविलंब उन कारकों में से एक है, जिसे उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपनी विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करते समय ध्यान में रखना चाहिए। उपयुक्त मामलों में, यदि आवेदक द्वारा अपने अधिकार का दावा करने में असावधानी या चूक रही हो, और समय के अंतराल तथा अन्य परिस्थितियों के साथ मिलकर उससे प्रतिपक्ष को हानि पहुँचती हो, तो उच्च न्यायालय अपनी असाधारण शक्तियों का प्रयोग करने से इंकार कर सकता है। यहाँ तक कि जहाँ मौलिक अधिकार भी संलिप्त हों, तब भी विषय न्यायालय के विवेकाधिकार में रहता है, जैसा कि दुर्गा प्रसाद बनाम मुख्य आयात-निर्यात नियंत्रक में प्रतिपादित किया गया है। निस्संदेह, यह विवेकाधिकार न्यायोचित एवं युक्तिसंगत ढंग से प्रयोग किया जाना चाहिए।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(15) वर्तमान प्रकरण में, कार्य हेतुक वर्ष 1999 में उत्पन्न हुआ, जब समान परिस्थितियों वाले अन्य कर्मचारियों को उच्च वेतनमान का लाभ प्रदान किया गया। याचिकाकर्ता ने दिनांक 09.07.2007 को यह याचिका प्रस्तुत करने तक कोई कदम नहीं

---

4 (1995) 4 SCC 172
5 (2006) 4 SCC 322

उठाया और वह उदासीन एवं शिथिल बना रहा। इस प्रकार का विलंबित दृष्टिकोण निश्चित रूप से प्रतिपक्ष के लिए कठिनाई एवं असुविधा उत्पन्न करेगा।

(16) परिणामस्वरूप तथा उपर्युक्त कारणों से, यह रिट याचिका न्यायालय में विलंब से आने के आधार पर ग्राह्य नहीं मानी जाती है और इसी आधार पर खारिज की जाती है।

सही/-

(सतीश के. अग्निहोत्री)

न्यायाधीश

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

अस्वीकरणः हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु **निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।**